

म
१२९

३६

१००

१००

१००
३६०
१००

१००





गंगालहरी

५
२५

फा
२५
५

३
५२



३३
७०



५
११
५

पद्माकर



श्रीरामरत्न-पुस्तक-माला—द्वितीय पुष्प

पद्माकर कृत

गंगालहरी

३
१२



संपादक

विश्वनाथप्रसाद मिश्र बी० ए०

साहित्यरत्न

भारतेंदु अष्टाशताब्दी

प्रकाशक

श्रीरामरत्न-पुस्तक-भवन, काशी

प्रथमावृत्ति

१९९१

मूल्य -)॥

मुद्रक

बजरंगबली 'विशारद'

श्रीसोत्ताराम प्रेस, जालिपादेवी, काशी



प्रस्तावना

संस्कृत में जिस प्रकार पंडितराज जगन्नाथ की 'गंगालहरी' प्रसिद्ध हुई ठीक उसी प्रकार हिंदी में कविवर पद्माकर की 'गंगालहरी'। यदि जनश्रुति को ठीक मानें तो एक प्रकार से दोनों की रचना के हेतु भी एक-से ही हैं। जिस प्रकार पहली 'गंगालहरी' के अनुकरण पर संस्कृत में अन्य रचनाएँ हुई उसी प्रकार दूसरी 'गंगालहरी' की जोड़-तोड़ में भी 'जमुना-लहरी' (ग्वाल), 'सरजू-लहरी' (लखिराम) आदि रची गईं। जिस प्रकार पंडितराज की रचना की बराबरी

कोई नहीं कर सका ठीक उसी प्रकार 'पद्माकर' की रचना को भी कोई नहीं पहुँचा ।

कवि ने इस छोटी-सी रचना में वचन-भंगि का आधार अधिक लिया है, जिसे आलंकारिक 'व्याजस्तुति' आदि नाम देते हैं । यद्यपि इन थोड़े-से छंदों में एक ही भाव बहुत थोड़े हेर-फेर से कई रूपों में मिलेगा, पर इसमें संदेह नहीं कि प्रत्येक छंद में कुछ-न-कुछ कहा अवश्य गया है, केवल चार पदों का ढाँचामात्र नहीं खड़ा किया गया है । इसमें भाषा की सफाई के अतिरिक्त उक्ति-निर्वाह भी पाया जाता है ।

× × × ×

'पद्माकर' की 'गंगालहरी' के कवित्त यद्यपि जनता बड़े चाव से पढ़ती और सुनती है, पर वेंकटेश्वर प्रेसवाले पुराने ढंग के संस्करण के अतिरिक्त और कोई संस्करण देखने में नहीं आता । इसी से 'श्रीरामरत्न-पुस्तक-माला' के द्वितीय पुष्प के रूप में यह संस्करण प्रकाशित किया जाता है । आशा है यह संस्करण साहित्यिक और धार्मिक दोनों प्रकार की दृष्टि रखनेवालों के लिये उपयोगी सिद्ध होगा ।

ब्रह्मनाल, काशी
श्रीगणेश-चतुर्थी, १९९१

}

विश्वनाथप्रसाद मिश्र

प
२४७

प
२४७



गंगालहरी

(दोहा)

हरि हर बिधि को सुमिरि कै, काटहु कठिन कलेस ।
कवि 'पदमाकर' करत है, गंगालहरी बेस ॥१॥

(कवित्त)

बई ती विरंचि भई बामन-पगन पर,
फैली-फैली फिरी ईस-सीस पै सुगथ की ।
आइ कै जहान जन्हु-जंघा लपटाई फेरि,
दीनन के हेत दौरि कीन्ही तीनि पथ की ॥
कहै 'पदमाकर' सु महिमा कहाँ लौं कहौं,
गंगा नाम पायो सोही सबके अरथ की ।
चारथो फल-फली फूली गहगही बहबही,
लहलही कीरति-लता है भगीरथ की ॥२॥

क्रूरम पै कोल कोल हू पै सेष-कुंडली है,
 कुंडली पै फबी फैल सुफन हजार की ।
 कहै 'पदमाकर' त्यों फन पै फबी है भूमि,
 भूमि पै फबी है थिति रजत-पहार की ॥
 रजत-पहार पर संसु सुरनायक हैं,
 संसु पर ज्योति जटाजूट है अपार की ।
 संसु-जटाजूटन पै चंद की छुटी है छटा,
 चंद की छटान पै छटा है गंग-धार की ॥३॥
 करम को मूल तन तन-मूल जीव जग,
 जीवन को मूल अति आनंद ही धरिबो ।
 कहै 'पदमाकर' त्यों आनंद को मूल राज,
 राज-मूल केवल प्रजा को भौन भरिबो ॥
 प्रजा-मूल अन्न सब अन्नन को मूल मेघ,
 मेघन को मूल एक जज्ञ अनुसरिबो ।
 जज्ञन को मूल धन, धन-मूल धर्म, अरु
 धर्म-मूल गंगाजल-बिंदु पान करिबो ॥४॥
 सहज सुभाय आय एक महापातकी की,
 गंगा मैया धोई तू तौ देह निज आप है ।
 कहै 'पदमाकर' सु महिमा मही में भई,
 महादेव देवन में बाढ़ी थिर थाप है ॥
 जकि-से रहे हैं जम, थकि-से रहे हैं दूत,
 दूनी सब पापन के उठी तन ताप है ।
 बाँची बही बा की गति देखि कै बिचित्र रहे,
 चित्र-कैसे लिखे चित्रगुप्त चुपचाप है ॥५॥

गंगा के चरित्र लखि भाष्यौ जमराज, यह
 ए रे चित्रगुप्त मेरे हुक्म में कान है ।
 कहै 'पदमाकर' नरक सब मूँदि करि,
 मूँदि दरवाजेन को तजि यह थान है ॥
 देखु यह देवनदी कीन्हें सब देव, या तें
 दूतन बुलाइ कै बिदा के बेगि पान है ।
 फारि डारु फरद न राखु रोजनामा कहूँ,
 खाता खति जान दै बही को बहि जान दै ॥६॥
 जान्यो जिन है न जज्ञ जोग जप जागरन,
 जन्महि बितायो जग जोयन को जोइ कै ।
 कहै 'पदमाकर' सुदेवन की सेवन तें,
 दूरि रहे पूरि मति - बेदरद होइ कै ॥
 कुटिल कुराही कूर कलही कलंकी, कलि-
 काल की कथान में रहे जे मति खोइ कै ।
 तेऊ बिस्तु-अंगन में बैठे सुर-संगन में,
 गंग की तरंगन में अंगन को घोइ कै ॥७॥
 जैसे तैं न मो सों कहूँ नेक हू डरात हुतो,
 तैसो अब तो सों हौँ हूँ नेक हू न डरिहौँ ।
 कहै 'पदमाकर' प्रचंड जौ परैगो तो,
 चमंडि करि तो सों मुजदंड ठोंकि लरिहौँ ॥
 चलो-चलु चलो-चलु बिचलु न बीच ही तें,
 कीच-बीच नीच तो कुटुंब को कचरिहौँ ।
 ए रे दगादार मेरे पातक अपार तोहि,
 गंगा की कछार में पछारि छार करिहौँ ॥८॥

आयो जौन तेरी घौरी धारा में घसत जात,
 तिन को न होत सुरपुर तें निपात है ।
 कहै 'पदमाकर' तिहारो नाम जा के मुख,
 ता के मुख अमृत को पुंज सरसात है ॥
 तेरो तोय ह्वै कै औ छुवति तन जा को बात,
 तिन की चलै न जमलोकन में बात है ।
 जहाँ-जहाँ मैया तेरी धूरि उड़ि जाति गंगा,
 तहाँ-तहाँ पापन की धूरि उड़ि जात है ॥९॥
 जमपुर द्वारे लगे तिन में केवारे, कोऊ
 हैं न रखवारे ऐसे वन के उजारे हैं ।
 कहै 'पदमाकर' तिहारे ग्रन धारे तेड,
 करि अघ भारे सुरलोक को सिधारे हैं ॥
 सुजन सुखारे करे पुन्य उजियारे अति,
 पतित-कतारे भवसिंधु तें उतारे हैं ।
 काहू ने न तारे तिन्हें गंगा तुम तारे, और
 जेते तुम तारे तेते नभ में न तारे हैं ॥१०॥
 सुचित गोविंद ह्वै कै सेवते कहाँ धौं जाइ,
 जलजंतु-पति जरि जैवे को अमिलती ।
 कहै 'पदमाकर' सु जादा कहौं कौन अब,
 जाती मरजादा ह्वै मही की अनमिलती ॥
 जल थल अंतरिच्छ पावते क्यों पापी मुक्ति,
 मुनिजन जापकन जो न दुरि मिलती ।
 सूखि जातो सिंधु बडवानल की झारन सों,
 जो न गंगाधार ह्वै हजार धार मिलती ॥११॥

बिधि के कर्मखल की सिद्धि है प्रसिद्धि यही,
 हरि-पद-पंकज-प्रताप की लहर है ।
 कहै 'पदमाकर' गिरीस-सीस-मंडल के
 मुंडन की माल ततकाल अबहर है ॥
 भूपति भगीरथ के रथ की सुपुन्य-पथ,
 जन्हु-जप-जोग-फल-फैल की फहर है ।
 छेम की छहर गंगा रावरी लहर,
 कलिकाल को कहर जमजाल को जहर है ॥१२॥
 हौं तौ पंचभूत तजिबे को तक्को तोहि, पर
 तैं तौ कखो मोहिं भलो भूतन को पति है ।
 कहै 'पदमाकर' सु एक तन तारिबे में,
 कीन्हें तन ग्यारह कहौ सो कौनि गति है ॥
 मेरे भाग गंग यहै लिखी भागीरथी, तुम्हें
 कहिए कछुक तौ कितेक मेरी मति है ।
 एक भवसूल आयौं मेढिबे को तेरे कूल,
 तोहि तौ त्रिसूल देत बार न लगति है ॥१३॥
 भाषा होति भूषित सु पूरी अभिलाषा होति,
 सुजस-लतान की सु साखा है सुगति की ।
 कहै 'पदमाकर' त्यों बदन बिसाल होत,
 हाल होत हेरि छल-छिद्रन की खतिकी ॥
 गंगाजू हितारे गुनगान करें अजगवै,
 आनि होति बरषा सु आनंद की अति की ।
 पूर होत पुन्यन को धूर होत अधरम,
 चूर होति चिंता दूर होति दुरसतिकी ॥१४॥

सूघरो जो होतो मोंगि लेतो और दूजो कहूँ,
 जातो बन खेती करि खातो एक हर की ।
 ए तो 'पदमाकर' न मानत है नाथि चलें,
 मुजन के साथ है गेरया अजगर की ॥
 मैं तो याहि छोड़ों पै न मो को यह छोड़त है,
 फेरि लै री फेरि व्याधि आपने बगर की ।
 सैल पै चढ़त गहि ऊरध की गैल गंगा,
 कैसो बैल दीन्हों जो न गैल गहै घर की ॥१५॥
 जोग अप जागै छौंड़ि जाहु न परागै भैया,
 मेरी कही आँखिन के आगे सु तौ आवैगी ।
 कहै 'पदमाकर' न ऐहै काम सरस्वती,
 साँच हू कलिंदी कान करन न पावैगी ॥
 लैहै छीनि अंबर दिगंबर कै जोरावरी,
 बैल पै चढ़ाइ फेरि सैल पै चढ़ावैगी ।
 मुंडन के माल की मुजंगन के जाल की,
 सु गंगा गजखाल को खिलत पहिरावैगी ॥१६॥
 लोचन असम अंग असम चिता को लाइ,
 तीनों लोक नायक सो कैसे कै ठहरतो ।
 कहै 'पदमाकर' बिलोकि इमि ढंग जाके,
 वेद हू पुरान गान कैसे अनुसरतो ॥
 बाँधे जटाजूट बैठि परबत-कूट माहिं,
 महाकालकूट कहौ कैसे कै ठहरतो ।
 पीवै नित भंग रहै प्रेतन के संगै, ऐसे
 पूछतो को नंगै जो न गंगै सीस धरतो ॥१७॥

पापन की पाँति भाँति-भाँति बिललाति परी,
 जम की जमाति हलकंपन हिलति है ।
 कहै 'पदमाकर' हमेसा दिव्य-बीथिन में,
 बानन की रेल-ठेल ठेलनि ठिलति है ॥
 सुरधुनि रावरे उधारे जग-जीवन की,
 छिन-छिन सेन सिबलोक को मिलति है ।
 आसन अरघ देत-देत निसिबासर,
 बिचारे पाकसासन को साँस न मिलति है ॥१८॥
 सबन के बीच बीच-समै महानीच-मुख
 गंगा मैया तेरे आजु रेनु-कन द्वै गये ।
 कहै 'पदमाकर' दसा यों सुनौ ताकी वा की,
 छवि की छटान सों त्यों छित-छोर छै गये ॥
 दूत दषकाने चित्रगुप्त चुपकाने, औ
 जकाने जमजाल पाप-पुंज लुंज त्वै गये ।
 चारिमुख चारिमुज चाहि-चाहि रहे ताहि,
 पंचन के देखत ही पंचमुख है गये ॥१९॥
 कलि के कलंकी कूर कुटिल कुराही केते,
 तरि गे तुरंत तबै लीन्ही रेनु-राह जब ।
 कहै 'पदमाकर' प्रयास बिन पावै सिद्धि,
 मानत न कोऊ जमदूतन की दाह दब ॥
 कागज करम करतूति के सठाइ धरे,
 पचि-पचि पेच में परे हैं प्रेतनाह अब ।
 बेपरद बेदरद गजब गुनाहिन के,
 गंगा की गरद कीन्हें गरद गुनाह सब ॥२०॥

रेनुका की रासन में कीच-कुस-कासन में,
 निकट निवासन में आसन लदाऊ के ।
 कहै 'पद्माकर' तहाँई मंजु सूरन में,
 धौरी-धौरी धूरन में पूरन प्रभाऊ के ॥
 वारन में पारन में देखहु दरारन में,
 नाचति है मुकुति अधीन सब काऊ के ।
 कूल औ कछारन में गंगाजल-धारन में,
 मँझरा मँझारन में झारन में झाऊ के ॥२१॥
 तेरे तीर जौ लौं एक लहर निहारियतु,
 तौ लौं कैयो लच्छ सूच्छ लहरन धारती ।
 कहै 'पद्माकर' चहाँ जौ वरदान, तौ लौं
 कैयो वरदानन के गान अनुसारती ॥
 जौ लौं लगौं काहु सों कहन कला एक तौ लौं,
 कैयो लच्छ कला के समूहन सँभारती ।
 जौ लौं एक तारे को हौं रचत कवित्त गंगे,
 तौ लौं तुम केतिक करोरि तारि डारती ॥२२॥
 गंगाजू तिहारे तीर आछी भाँति 'पद्माकर'
 देखि एक पातकी की अदमुत गति है ।
 आइ कै गोविंद बाँह धरि कै गरुडजू पै,
 आपनेई लोक जाइबे की कीन्ही मति है ॥
 जौ लौं चलिबे को भये गाफिल गोविंद तौ लौं,
 चोरि चतुरानन चलाई हंसगति है ।
 जौ लौं चतुरानन चितैबे चारों ओर, तौ लौं
 वृष पै चढाइ लै गयोई वृषपति है ॥२३॥

पापी एक जात हुतो गंगा के अन्हाइवे को,
 ता सों कहै कोऊ एक अधम अपान में ।
 जाहु जनि पंथी उत बिपति बिसेषि होति,
 मिलैगो महान कालकूट खान-पान में ॥
 कहै 'पदमाकर' भुजंगनि बँधेंगे अंग,
 संग में सुभारी भूत चलेंगे मसान में ।
 कमर कसैगो गजखाल ततकाल, बिन
 अंबर फिरैगो तू दिगंबर दिसान में ॥२४॥
 कैधौं तिहूँ लोक की सिँगार की विसाल माल,
 कैधौं जगी जग में जमाति तीरथन की ।
 कहै 'पदमाकर' विराजै सुरसिंधु-धार,
 कैधौं दूधधार कामधेनुन के थन की ॥
 भूपति भगीरथ के जस की जलूस कैधौं,
 प्रगटी तपस्या कैधौं पूरी जन्हु-जन की ।
 कैधौं कछु राखै राकापति सों इलाका भारी,
 भूमि की सलाका कै पताका पुन्य-गन की ॥२५॥
 जम को न जोर जब पापिन पै चलयो तब,
 हाथ जोरि गंगाजू सों चुगुली करें खरे ।
 बड़ेन पै ढरौ पै ना ढरौ देवि तुच्छन पै,
 कहै 'पदमाकर' सुनावत हरे-हरे ॥
 बड़ेन पै ढरे बड़ी पाइये बड़ाई देखौ,
 ईस पै ढरीं तौ तुम्हें ईस सीस पै ढरे ।
 तुच्छन को देतीं जैसो नारायन रूप, तैसो
 तुच्छ तुम्हें तुच्छ करि पायन तरे करे ॥२६॥

अधम अजान एक चढ़ि कै बिमान भाष्यो,
 ब्रूकत हौं गंगा तोहि परि-परि पाइ हौं ।
 कहै 'पदमाकर' कृपा करि बतावै सौँची,
 देखे अति अदसुत रावरे सुभाइ हौं ॥
 तेरे गुनगान ही की महिमा महान मैया,
 कान-कान नाइ कै जहान-मध्य छाइहौं ।
 एक मुख गाये ता के पंचमुख पाये, अब
 पंचमुख गाइहौं तौ केते मुख पाइहौं ॥२७॥
 पापन की पौंति महामंद मुख मैली भई,
 दीपति दुचंद फैली घरम-समाज की ।
 कहै 'पदमाकर' त्यों रोगन की राह परी,
 दाह परी दुःखन में गाह अति गाज की ॥
 जा दिन तें भूमि माहिं भगीरथ आनी, जग
 जानी गंगधारा या अपारा सब काज की ।
 ता दिन तें जानी-सी बिकानी बिललानी-सी,
 बिलानी-सी दिखानी राजधानी जमराज की ॥२८॥
 जम के जसूस बिनै जम सों हमेस करें,
 तेरी ठाकुरी को ठीक नेकु न निहारो है ।
 बड़े-बड़े पापो औ सुरापी द्विज-तापी, तहाँ
 चलन न पावै कहूँ हुकुम हमारो है ॥
 कहै 'पदमाकर' सुत्रद्वालोक विस्नुलोक,
 नाम लै कै कोऊ सिवलोक को सिधारो है ।
 बैठी सीस नंगा के तरंगा है अभंगा, ऐसी
 गंगा ने उठाइ दीन्हों अमल विहारो है ॥२९॥

बिन जप जज्ञ दान तीछन तपस्या ध्यान,
 चाहत हौ जो पै तिहूँ लोक में महाउदोत ।
 कहै 'पदमाकर' सुनौ तौ हाल, हामी भरो,
 लिखौ कहौ लै कै कहूँ कागद-कलम-दोत ।
 गंगाजू के नाम सुने हामी भरे लिखे कहे,
 ऐसे चढ़ि जात कछु पुन्यन के पूरे गोत ।
 सौ गुने सुने तैं औ हजार गुने हामी भरे,
 लाख गुने लिखत करोरि गुने कहे होत ॥३०॥
 परो एक पतित पराउ तीर गंगाजू के,
 कुटिल कृतघ्नी कोढ़ी कुंठित कुडंगी अंध ।
 कहै 'पदमाकर' कहौँ मैं कौन वाकी दसा,
 कीट परि गये तन आवै महा दुरगंध ॥
 पाप हाल छूटि गे सु लूटि गे बिपत्ति-जाल,
 दूटि गे तढ़ाक दे सुनाम लेत भवबंध ।
 गं कहे गनेस-वेस दौरि गही बाँह अरु,
 गा के कहे गरुड़ चढाइ लीन्हों निज कंध ॥३१॥
 सरद-घटा-सी खासी उठती अटा-सी,
 दुपटा-सी छिति छोरधि-छटा-सी निरधारिये ।
 लज्जा-सी छुटी-सी छारद्वारी-सी गढ़ी-सी गढ़,
 मठ-सी मढ़ी-सी औ गढ़ी के ढार ढारिये ॥
 कहै 'पदमाकर' सु घौरी-घौरी दौरी आवै,
 चौरी-चौरी चंचल सुचारु चिन्हवारिये ।
 हरे-हरे छवि नई-नई न्यारी-न्यारी नित,
 लहरैं निहारि प्यारी गंगाजू तिहारिये ॥३२॥

विघन विनास भवपास होत नासै भासै,
 नासै पुन्य-पुंज को प्रकासै रंगरंगा के ।
 सुख की समाजै उपराजै साज छाजै छिति,
 घन-सी गराजै राजै सीस ईस नंगा के ॥
 कहै 'पद्माकर' सुजानै करि ज्ञानै जानै,
 तानै मनमानै भोग आनै देव-अंगा के ।
 सुंदर सुभंगा नित अमित अभंगा आछे,
 अघ-ओघ-भंगा ये तरंगा देवि गंगा के ॥३३॥
 तहाँ आइ भूमि तें लगाइ आसमान हू लौं,
 जानि गिरवान औ विमानन के जुरे थोक ।
 कहै 'पद्माकर' जो कोऊ नर जैसे तैसे, तन
 देत गंगा - तीर तजि कै महाच सोक ।
 सो तो देत व्याधै विष दुःखन दिनाई देत,
 पापन के पुंज को पहारन को ठोक-ठोक ॥
 दगा देत दूतन चुनौती चित्रगुप्तै देत,
 जम को जरब देत पापी लेत सिवलोक ॥३४॥
 सुखद सुहाई मनभाई मुनिदेवन के,
 निखिल निकाई रूप बेदन में गाई है ।
 कहै 'पद्माकर' कहाँ लौं साधुताई कहाँ,
 सब ही पै एक-सी दया-सी बगराई है ॥
 पुन्यताई धारत उधारत अधमताई,
 नीक ठकुराई की ठसक ठहराई है ।
 जहाँ-जहाँ जम की जमाति कीन्ह करामाति,
 तहाँ-तहाँ फिरै देवि गंगा की दुहाई है ॥३५॥

गंगाजू के नीर-तीर छोड़े हैं सरीर जिन,
 तेऊ गने जात पुन्यवंतन की धुर हैं ।
 कहै 'पदमाकर' त्यों तिन की जलूसै लखि,
 गीरवान सकल सराहैं जुर-जुर हैं ।
 सारथी गोबिंद दीपदानवारे भानु होत,
 पंखवारे भारे पाकसासन-से सुर हैं ॥
 खौरवारे बरुन तमोरवारे तारापति,
 चौंरवारे चारु चतुरानन चतुर हैं ॥३६॥
 एक महापातकी सुगात की दसा बिलोकि,
 देत यों उराहनो सु आठ हू पहर है ।
 मोच-समै तेरे उत आप गये कंठ, इत
 ब्यापि गयो कंठ कालकूट-सो जहर है ।
 आप चढ़ी सीस मोहिं दीन्ही बकसीस,
 औ हजार सीसवारे की लगाई अटहर है ।
 मोहिं करि नंगा अंग-अंगनि भुजंगा वाँधो,
 ए री मेरी गंगा तेरी अद्भुत लहर है ॥३७॥
 कीजतु फिराद सुनि लीजिये हमारी गंगा,
 साखन के साथी दुःख दिगगज डिगाये तू ।
 कहै 'पदमाकर' जु जानत न कोऊ दूजो,
 तौन जस जगा-जगा जगद्रम गाये तू ॥
 आयो हुतो हौं तो कछु लीबे को तिहारे पास,
 जनम के जोरे मेरे पातक हिराये तू ।
 छोड़ि-छोड़ि तत्र तन सोये ते गरीब जे वै,
 ते वै पूरे-पूरे पुन्य-पटल जगाये तू ॥३८॥

मुनि मन माने सनमाने सारदादि बंदि,
 नारदादि जाने जे बखाने वेद-बानी के ।
 आप अविनासी हैं विनासी दुःखजालन के,
 पुन्य के प्रकासी प्रन-पूरक सु प्रानी के ।
 कहै 'पदमाकर' सु पाप-तम-पूषन हैं,
 दूषन-रहित भव-भूषन महानी के ।
 श्यावौ अब श्यावौ लोक पावौ देवदेवन के,
 गावौ अरे गावौ गुन गंगा महारानी के ॥३९॥
 लाइ भूमिलोक तैं जसूस जबरई जाइ,
 जाहिर खबर करी पापिन के मित्र की ।
 कहै 'पदमाकर' बिलोकि जम कही कै,
 विचारौ तौ करम-गति ऐसे अपवित्र की ।
 जौ लौं लगे कागद बिचारन कछुक तौ लौं,
 ता के कान परी धुनि गंगा के चरित्र की ।
 वा के सीस ही तैं ऐसी गंगधार बही, जा में
 बही-बही फिरी बही चित्र औ गुपित्र की ॥४०॥
 सुरसरि मैया एक पातकी पुकाख्यो तोहि,
 ऐसो दिव्य दीन्हों तपतेज वोहि तैं नै है ।
 कहै 'पदमाकर' स्वलोक तिहि आगे रखि,
 करत प्रनाम सुरबृंद सब न-नै है ।
 व्याकुल बिलोकि वह बोल्यो देवि देवन सों,
 कोऊ ना डराहु तुम्हैं और कछु दैनै है ।
 इंद्र सों कहत मोहिं लनै है न इंद्रलोक,
 संमुलोक लैनै कै गोविंद लोक लैन है ॥४१॥

हेरि-हेरि हँसत न चाहत हरषि चढ्यो,
 वैलहु बिलोकि मन वा की ओर तरको ।
 कहै 'पदमाकर' सु देखि कै गरुड़ हू को,
 लेखि निज भाग अनुरागि कै न सरको ॥
 का पै चढ़ौं कौन तजौं चाहत सबन,
 यह सोचत पतित परयो गंगा-तीर पर को ।
 जौ लौं घरी द्वैक रूप हर को न पायो, तौ लौं
 पातकी बिचारो भयो चोर भरे घर को ॥४२॥
 वा को जस कितहूँ न जाग्यो परतच्छपई,
 या को धाम-धाम फैलि-फैलि रह्यो जस है ।
 वा को सुन्यो एक देवलोक में दरस होत,
 या को तौ दिखात तिहूँ लोक में दरस है ॥
 कहै 'पदमाकर' सुदान वह माँगे देत,
 ये तौ बिन माँगे सबै देत सरबस है ।
 आछो अभिराम कहै पूरन सकल काम,
 गंगाजू को नाम कामतरु तें सरस है ॥४३॥
 सारमाला सत्य की बिचारमाला बेदन की,
 भारी भागमाला है भगीरथ नरेस की ।
 तपमाला जन्हु की सु जपमाला जोगिन की,
 आछी आपमाला या अनादि ब्रह्मबेस की ॥
 कहै 'पदमाकर' प्रमानमाला पुन्यन की,
 गंगाजू की धारा धनमाला है धनेस की ।
 ज्ञानमाला गुरु की गुमानमाला ज्ञानिन की,
 ध्यानमाला ध्रुव मौलिमाला है महेस की ॥४४॥

ज्ञानन में ध्यानन में निगम-निदानन में,
 मिलत न क्यों हूँ हरि ही में ध्याइयतु है ।
 कहै 'पदमाकर' न तच्छन प्रतच्छ होत,
 अच्छन के आगे हू अधिच्छ गाइयतु है ॥
 इंदिरा के मंदिर में सुनिये अनंद-भरे,
 बीधे भव-फंद तहाँ कैसे जाइयतु है ।
 वेदन के वृंद में न पैये छीरसिंधु में,
 सु गंगाजल-बिंद में गुबिंद पाइयतु है ॥४५॥
 नीर के निकट रेनु-रंजित लसै यों तट,
 एकपट चादर की चाँदनी बिछाई-सी ।
 कहै 'पदमाकर' त्यों करत कलोल लोक,
 आवरत पूरे रासमंडल की पाई-सी ।
 विसद बिहंगन की वानो राग राचती-सी,
 नाचती तरंग ऐन आनंद बधाई-सी ।
 अघ की अँधेरी कहूँ रहन न पाई, फिरै
 धाई-धाई गंगाधार सरद-जुन्हाई-सी ॥४६॥
 काम अरु क्रोध लोभ मोह मद मातसर्य,
 इन की जँजीरन को जारिहै पै जारिहै ।
 कहै 'पदमाकर' पसारि पुन्य चारौ ओर,
 चारौ फल धामन में धारिहै पै धारिहै ॥
 शोभ छल छंदन को बाढ़े पाप-वृंदन को,
 फिकिरि के फंदन को फारिहै पै फारिहै ।
 एकै बार बारि जिन गंगा को पियो है,
 तिन्हें तारनि तरंगिनी या तारिहै पै तारिहै ॥४७॥

मुँडन की माल देखौ भाल पर ज्वाल कीबो,
 छीन लीबो अंबर अडंबर जहाँ जैसो ।
 कहै 'पदमाकर' त्यों बैल पै चढ़ाइबो,
 उढ़ाइबो पुरानी गजखाल को भलो तैसो ॥
 नंगा करि डारिबो सुभंगा भखि डारिबो,
 सु गंगा दुख मानिबो न बूझे तें कछू वैसो ।
 साँपनि सिँगारिबो गरे में बिष पारिबो,
 जु तारिबो ऐसो तौ बिगारिबो कहौ कैसो ॥४८॥
 सूधे भये जे हैं नर गंगा के अन्हाइबे को,
 कामी बदनामी फ़ामी कैयक करोर हैं ।
 कहै 'पदमाकर' त्यों तिन की अवाइन के,
 माचि रहे जोर सुर-लोकन में सोर हैं ॥
 बार-बार हाट-सी लगाये लखैं घाट-घाट,
 बाट हेरैं तीर में कवै धौं तन बोरहैं ।
 एक ओर गरुड़ सुहंस एक ओर ठाढ़े,
 एक ओर नाँदिया बिमान एक ओर हैं ॥४९॥
 आस करि आयो हुतो मैया पास रावरे में,
 गाढ हू के पास दुख दूरि बुटि-बुटि गे ।
 कहै 'पदमाकर' कुरोग में सँघाती तेऊ,
 गैल में चलत घूमि-घूमि घुटि-घुटि गे ॥
 दगादार दोष दीह दारिद बिलाइ गये,
 फिकिरि के फंद बिन छोरे छुटि-छुटि गे ।
 जौ लौं आउ-आउ तेरे तीर पर गंगा तौ लौं,
 बीच ही में मेरे पाप-पुंज लुटि-लुटि गे ॥५०॥

भूमिलोक भुवर्लोक स्वर्गलोक महालोक,
 जनलोक तपलोक सत्यलोक कल हैं ।
 कहै 'पदमाकर' अतल में बितल में,
 सुतल में रसातल में मंजु महातल में ॥
 त्यों में तलातल में पताल में अचल चल,
 जेते जीव-जंतु बसैं भाषत सकल में ।
 बीच में न बिलमें विराजै बिस्तु-थल में,
 सु गंगाजू के जल में अन्हाये एक पल में ॥५१॥
 जनम-जनम जिन छोड्यो तौ न मेरो संग,
 अंग-अंग नित ही रहे जे लपटाने हैं ।
 कहै 'पदमाकर' तिहारी सौंह गंगा जोग-
 जप के जतन में न नेकु अकुजाने हैं ॥
 तौन पाप मेरे तेरे तीर पर मैया अब,
 मिलत न हेरे इत कित धौं हिराने हैं ।
 कचरे करार में वहे कै बीच धार में, कै
 बूढ़े वै सेवार में कि बारू में बिलाने हैं ॥५२॥
 योग हू में भोग में वियोग में संयोग हू में,
 रोग हू में रस में न नेकौ बिसराइये ।
 कहै 'पदमाकर' पुरी में पुन्य, रौरव में,
 फैलन में फैल-फैल गैलन में गाइये ।
 बैरिन में बंधु में बिथा में बंसबालन में,
 विषय में रन हू में जहाँ-जहाँ जाइये ।
 सोच हू में सुख में सुरी में साहिबी में कहूँ,
 गंगा गंगा गंगा कहि जनम बिताइये ॥५३॥

(दोहा)

गिरिख गजानन गिरिसुता ध्याइ, समुक्ति श्रुति-पंथ ।
कवि 'पदमाकर' ही कियो, गंगालहरी ग्रंथ ॥५४॥

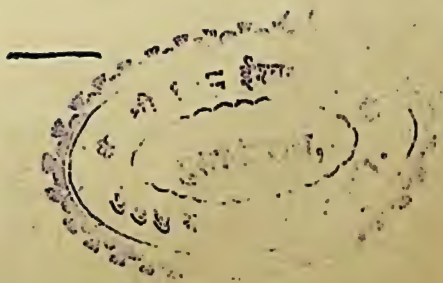
(कवित्त)

भारी-खो भुजंग भागीरथि के सुतोर परथो,
ताहि लखि खाइबे को तरछत पार भो ।
कहै 'पदमाकर' चतुर्भुज को रूप भयो,
बड़े-बड़े पापनि हूँ ताप को तिसार भो ।
नारद बिसारद हू सारद सराहैं भले,
इंद्र जम बरुन कुवेर परिवार भो ।
गंगा के प्रभाव लखि मुकुति मजाकी मंजु,
सोई अहि गरुड़ के कंध पै सवार भो ॥५५॥

(दोहा)

गंगालहरी जो सुजन, कहैं - सुनै श्रुति - सार ।
ताको गंगा देति है, सदा सुभग फल चार ॥५६॥

इति पद्माकरकृता गंगालहरी समाप्ता ।



जगद्विनोद

‘पद्माकर’ का ‘जगद्विनोद’ साहित्यिकों में बहुत प्रसिद्ध है। शृंगार-रस के आलंबन एवं उद्दीपन विभावों का विस्तार से तथा मोटे रूप से रस-मात्र का विवेचन इसमें बहुत साफ पाया जाता है। इन विषयों का अध्ययन करनेवाले विद्यार्थी सर्व प्रथम इसी पुस्तक का अध्ययन किया करते हैं। किंतु बहुत दिनों से इस पुस्तक का कोई संस्करण प्राप्य नहीं है। इसी अभाव की पूर्ति के लिये यह संस्करण प्रकाशित किया गया है। कई प्रतियों के आधार पर इसका पाठ-संशोधन बड़े परिश्रम के साथ किया गया है। विद्यार्थियों की सुविधा के लिये इसमें कठिन शब्दों एवं स्थलों की टिप्पणियाँ भी विस्तार से दी गई हैं। मूल्य १)

पता—

श्रीरामरत्न-पुस्तक-भवन,

महल्ला नंदनसाहू, काशी ।

